संवैधानिक प्रश्न पर राजनैतिक फैसला

न्यायालय के सामने एक सरल सा प्रश्न था – अनुसूचित जाति के राजकीय कर्मचारियों की पदोन्नति में आरक्षण लागू होना चाहिये अथवा नहीं। जम्मू काश्मीर आरक्षण अधिनियम 2004 तथा आरक्षण नियमावली 2005 के आधार पर राज्य सरकार के कुछ कर्मचारियों को आरक्षण का लाभ देते हुए पदोन्नति दी गयीं जिससे वे वरिष्ठता क्रम में उनसे ऊपर पहुंच गये जिनसे भरती के समय वे कनिष्ठ थे। पीड़ित पक्ष ने न्यायालय के सम्मुख याचिका दाय़र की।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं ने यह तर्क दिया कि 2004 का अधिनियम संघीय संविधान के 77वें संविधान संशोधन के आधार पर लाया गया है जिसे राष्ट्रपति के आदेश द्वारा राज्य में लागू नहीं किया गया है। प्रतिवादियों का तर्क था कि जब मूल अधिनियम राज्य में लागू है तो उसके संशोधन को स्वत: लागू मानना चाहिये। न्यायालय को इस पर फैसला देना था कि दोनों में से कौन सा मत विधिसम्मत है और राज्य में पदोन्नति में आरक्षण की सुविधा लागू होने योग्य है अथवा नहीं।

इस मतभिन्नता की पृष्ठभूमि में 16 नवम्बर 1992 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन्द्रा साहनी व अन्य बनाम भारतीय संघ मामले में सुनाया गया निर्णय है। इस वाद की जड़ें मंडल कमीशन तक जाती हैं जिसकी रिपोर्ट लागू किये जाने के विरुद्ध यह याचिका दायर की गयी थी। सर्वोच्च न्ययायालय ने अपने निर्णय में पदोन्नति में आरक्षण को गलत ठहराया। उनका मानना था कि रोजगार पाने के अवसर का उपयोग करने के बाद उसे वंचित नहीं माना जाना चाहिये।

1977 और 1989 में क्रमश: जनता पार्टी और जनता दल ने इसे लागू करने का प्रयास किया किन्तु परिणाम तक पहुंचने से पहले ही दोनों बार जनता सरकारों का पतन हो गया। 1992 में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव ने राजनैतिक निर्णय लेते हुए पदोन्नति में आरक्षण सुनिश्चित करने वाले प्रावधान 77वें संविधान संशोधन विधेयक के माध्यम से जोड़ कर इन्द्रा साहनी केस में दिये सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को निष्प्रभावी कर दिया।

संदर्भित मामले में सबसे पहले यह मामला न्यायमूर्ति धीरज सिंह ठाकुर की एकल पीठ के सम्मुख प्रस्तुत हुआ जिन्होंने इसे जम्मू काश्मीर उच्च न्य़ायालय के मुख्य न्यायाधीश को इस निवेदन के साथ सौंपा कि वाद के महत्व को देखते हुए इसे बड़ी बेंच को सौंपा जाय। मुख्य न्यायाधीश ने इसे जस्टिस हसनैन मसूदी और जस्टिस जनकराज कोतवाल की खण्डपीठ को भेजा।

न्यायमूर्ति धीरज सिंह ने वाद को केन्द्रित करते हुए कहा कि – "क्या इन्द्रा साहनी बनाम संघ के वाद में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जो प्रोन्नति के मामले में आरक्षण का निषेध करता है, जम्मू काश्मीर आरक्षण अधिनियम 2004 तथा उसके प्रकाश में बनाये गये नियम भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16(4ए) के लागू न होने की स्थिति में जम्मू काश्मीर राज्य में प्रवर्तित हो सकता है।

खण्डपीठ ने वाद को बहुआयामी मानते हुए समाधान के लिये निम्न प्रश्नों को इस परिधि में जोड़ा –

1. राज्य के लिये संविधान सभा का गठन और पृथक संविधान की रचना क्यों की गयी जबकि अन्य किसी भी रियासत, जिसका भारत में विलय हुआ में ऐसा नहीं हुआ ?

2. अन्य राज्यों की भांति भारतीय संविधान के सभी प्रावधान और समय-समय पर उनमें होने वाले संशोधन जम्मू काश्मीर में लागू क्यों नहीं होते हैं ?

3. क्या भारतीय संघ में अधिमिलन के उपरान्त संघीय संविधान के अनुच्छेद 1 और प्रथम अनुसूची में शामिल किये जाने के पश्चात भारतीय संविधान के राज्य में लागू प्रावधानों में होने वाले संशोधन भी स्वत: लागू हो जाते हैं ?

4. क्या राज्य की संविधान सभा द्वारा राज्य के संविधान निर्माण के पश्चात, एक अस्थायी प्रावधान के रूप में अनुच्छेद 370 की शक्तियां समाप्त हो जाती हैं, और राज्य में लागू होने वाले संविधान के प्रावधानों को राष्ट्रपति संशोधित नहीं कर सकते ?

5. क्या अनुच्छेद 370 के खण्ड 1 का उपखण्ड(डी) राज्य में लागू होने वाले संघीय संविधान के प्रावधानों में लघु संशोधनों और परिवर्तनों तक सीमित करता है तथा बदलने, जोड़ने, विलोपित करने तथा निरस्त करने से रोकता है ?

निश्चित रूप से खण्डपीठ को यह अधिकार है कि वह तय करे कि अपने निर्णय तक पहुंचने के लिये किन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक समझती है। लेकिन यह प्रश्न पीठ के सम्मुख उपस्थित याचिका के निस्तारण के लियें हों, यह स्वाभाविक रूप से अपेक्षित है। संदर्भित निर्णय में पीठ अपने निर्णय का दो-तिहाई भाग यह स्थापित करने के प्रयास में लगाती है कि अनुच्छेद 370 किस प्रकार स्थायी रूप ग्रहण कर चुका है। इस प्रयास में अनेक स्थानों पर वह अपने मत की पुष्टि के लिये तत्कालीन राजनेताओं के बयानों को भी प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करती है।

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी और न्यायमूर्ति राज कोतवाल की खंडपीठ ने अपने 60 पृष्ठों के फैसले में कहा, 'अस्थायी प्रावधान के शीर्षक के तौर पर खण्ड 21 में अस्थायी, परिवर्तनकारी और विशेष उपबंधों के शीर्षक से शामिल किया गया अनुच्छेद 370 संविधान में स्थायी जगह ले चुका है'। पीठ ने कहा कि इस अनुच्छेद को संशोधित नहीं किया जा सकता, हटाया नहीं जा सकता या रद्द नहीं किया जा सकता क्योंकि देश की संविधान सभा ने उसे भंग किए जाने से पहले इस अनुच्छेद को संशोधित करने या हटाए जाने की अनुशंसा नहीं की थी।
यह तर्क ऐसा ही है मानो किसी लड़की के पिता की मृत्यु हो जाये और तर्क दिया जाय कि अब उसका विवाह नहीं हो सकता क्योंकि जिस पिता को यह जिम्मेदारी निभानी थी वह मर चुका है। यह ठीक है कि राज्य की संविधान सभा अनुच्छेद 370 की समाप्ति अथवा संशोधन की सिफारिश किये बिना भंग हो गयी है किन्तु उसकी सिफारिश पर जिस राष्ट्रपति को आदेश जारी करना था वह संस्था मौजूद है।

निर्णय राष्ट्रपति को करना है और उसके लिये कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। राष्ट्रपति जब चाहें तब फैसला ले सकते हैं। इसी प्रकार, संसद को संविधान के मूलढ़ांचे को छोड़ अन्य सभी प्रावधानों में संशोधन करने का अधिकार है और अनुच्छेद 370 निश्चित रूप से मूल ढांचे का हिस्सा नहीं है।

पीठ के सम्मुख अनुच्छेद 370 के स्थायी अथवा अस्थायी दर्जे का प्रश्न था ही नहीं, फिर भी इस प्रश्न पर विचार के लिये पीठ द्वारा व्यय की गयी समय और ऊर्जा से यह संकेत मिलते हैं कि पीठ की रुचि इस वाद के माध्यम से कुछ अन्य मुद्दों और लोगों को भी संबोधित करने में थी।

यह संकेत तब और अधिक उभर कर आता है जब इसे एक अन्य खण्डपीठ द्वारा भूपेन्द्र सिंह सोढ़ी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और संतोष गुप्ता बनाम यूनियन ऑफ इंडिया मामलों में दिये गये निर्णय के साथ रख कर देखते हैं। इस वाद में भी पीठ ने अनुच्छेद 370 के स्थायी होने और उसके कारण संसद के सीमित अधिकारों को सिद्ध करने में काफी श्रम खर्च किया था। क्या कारण है कि वहां की खण्डपीठें बार-बार राज्य की विशेष स्थिति की समीक्षा करने का अवसर ढूंढ़ती हैं।

अनुच्छेद 370 भारतीय संविधान के 21वें भाग में समाविष्ट है जिसका शीर्षक है – अस्थायी, परिवर्तनीय और विशेष प्रावधान। अनुच्छेद 370 के शीर्षक के शब्द हैं – जम्मू काश्मीर के संबंध में अस्थायी प्रावधान। उल्लेखनीय है कि संविधान के 21वें भाग का शीर्षक प्रारंभ में अस्थायी तथा अंत: कालीन उपबंध था। 1962 में 13वां संविधान संशोधन लाकर शीर्षक में विशेष प्रावधान शब्द जोड़ा गया। लेकिन फिर भी अनुच्छेद 370 के साथ अस्थायी प्रावधान शब्द जुड़ा रहा क्योंकि विशेष प्रावधान जम्मू काश्मीर के लिये न होकर नगालैंड के लिये प्रयोज्य था।

इससे यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि न केवल 1949 में, जब अनुच्छेद 370 संविधान का भाग बना, संविधान निर्माताओं की मंशा इस प्रावधान को अस्थायी तौर पर शामिल करने की थी, बल्कि 1962 तक भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया था। यदि तत्कालीन सरकार अथवा संसद की मंशा इसे स्थायी बनाने की होती तो इसे भी संशोधन में शामिल किया जाता। उल्लेखनीय यह भी है कि दोनों ही अवसरों पर संसद में जम्मू काश्मीर के प्रतिनिधि मौजूद थे। 1949 में जब इसे अस्थायी प्रावधान के रूप में संविधान में शामिल किया गया तब तो स्वयं शेख अब्दुल्ला भी संविधान सभा के सदस्य थे।

प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने 21 अगस्त 1962 में जम्मू काश्मीर के एक प्रतिष्ठित लेखक पं प्रेमनाथ बजाज को 21 अगस्त 1962 को लिखे पत्र में कहा – वास्तविकता तो यह है कि संविधान का यह अनुच्छेद, जो जम्मू काश्मीर राज्य को विशेष दर्जा दिलाने का कारण बताया जाता है, उसके होते हुए भी कई अन्य बातें की गयी हैं और जो कुछ किया जाना है, वह भी किया जायेगा। मुख्य़ सवाल तो भावना का है, उसमें दूसरी और कोई बात नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि पं. नेहरू के मन में भी यह भाव था कि राज्य की शेष देश के साथ यह दूरी क्रमश: समाप्त होगी।

तकनीकी और विधिक बातों से इतर यह भी ध्यान देना होगा कि राज्य के जिन निवासियों के नाम पर यह सब किया जाता है उन्हें इसका कितना लाभ है। अंतत: कोई कानून नागरिकों की सुरक्षा और विकास के हेतु से ही बनाया और लागू किया जाता है। जम्मू काश्मीर का आम नागरिक अनुच्छेद 370 की आड़ में लागू किये गये प्रावधानों का बंधक है, पीड़ित है। वह विकास की मुख्य धारा से दूर है। देश के अन्य सभी नागरिकों को सहज उपलब्ध संवैधानिक अधिकारों से वंचित है। अनुच्छेद 370 के अंतर्गत पनपी राजनैतिक व्यवस्था लाखों लोगों के हितों की कीमत पर मुठ्ठी भर लोगों के निहित स्वार्थों को पूरा करने का जरिया बन गयी है। वही लोग हैं जो इस दूरी को बनाये रखना चाहते हैं और स्थिति में

बदल आने की संभावना से ही कांप उठते हैं।

वे आगे लिखते हैं – "समय के साथ-साथ धारा 370 सत्ताधारी राजकुलीनों और अफसरशाही, व्यापारियों, न्यायप्रणाली तथा वकीलों के हाथों शोषण का साधन बन चुका है। इससे एक दुष्चक्र स्थापित हो गया है जो अलगाववादी बलों को जन्म देता है और ये बल बदले में 370 को मजबूत बनाते हैं। सामान्य जनता को यह समझने ही नहीं दिया जाता कि दरअसल धारा 370 उन्हें पनपने ही नहीं दे रही है, न्याय नहीं मिल रहा है और आर्थिक विकास में उनकी भागीदारी से भी उन्हें दूर रख रहा है"।

आज देश की राजनीति अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग, महिला वंचित आदि मुद्दों के इर्द-गिर्द घूम रही है। देश यह स्वीकार कर चुका है कि समाज की कमजोर कड़ी को ताकत दिये बिना देश की विकास यात्रा पूरी कर पाना संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में किसी एक राज्य में इन वर्गों के साथ जिस प्रकार का भेद-भाव हो रहा है वह किसी भी सभ्य समाज में अस्वीकार्य होना चाहिये। दुर्भाग्य से उन वर्गों के प्रतिनिधित्व की दावेदारी करने वाले भी जम्मू काश्मीर के सवाल पर मौन साध लेते हैं। लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों का तकाजा है कि अब यह जड़ता टूटनी ही चाहिये।

लेखक www.jammukashmirnow.org से जुड़े हैं